सीखने के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का संक्षिप्त इतिहास

जीरोम ब्रूनर

सीखना क्या है? इस विषय पर अंतहीन शोध हो जाने के बावजूद इससे जुड़े अनेक भ्रम आज भी बने हुए हैं। हम सीखने से क्या अर्थ लेते हैं, यह निश्चित तौर पर इस बात से तय होता है कि हम इसका अध्ययन किस तरह करते हैं। महाविद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी कैसे निरर्थक शब्दांशों को स्मरण कर लेते हैं, इसका अध्ययन करने के बजाय यदि इस पर अध्ययन किया जाता है कि बच्चे अपनी मूल भाषा पर पकड़ कैसे बनाते हैं; तो आप सीखने से संबंधित एक अलग अवधारणा पर पहुंचते हैं। क्या हारमोनियम पर उंगलियां चलाना सीखना अथवा एक भूल-भुलैया वाली पहेली में उंगलीयों से रास्ता खोजने में एक ही प्रकार की प्रक्रियाएं शामिल होती हैं? क्या सभी तरह से सीखना एक समान होता है, जिसे कुछ नियमों के एक समुच्चय तक सीमित किया जा सकता है?

कोई एक चीज़ सीख कर दूसरे में भी निपुणता हासिल कर लेने को तथाकथित रूप से 'अंतरण की कसौटी' (transferred criterion) कहते हैं। परंतु ऐसी स्थिति में, सीखी गई किस चीज का अंतरण होता है? किन प्रतिक्रियाओं का अंतरण होता है? किन नियमों से अंतरण होता है? या महज हम सीखना सीख जाते है। मसलन, पर्याप्त अभ्यास करने के बाद हम परीक्षा देने या टैक्स का फार्म भरने में निपुणता प्राप्त कर लेते हैं। हम परिस्थितियों को समझना कैसे सीखते हैं? हम अपना ध्यान केंद्रित करना कैसे सीखते हैं?

इसके अतिरिक्त यह प्रश्न भी पूछा जाता है कि सीखना कितने तरीकों से संभव होता है? क्या सभी प्रजातियां समान रूप से सीखती हैं? क्या बुद्धिमान और मंदबुद्धि दोनों समान रूप से सीखते हैं? तथा बाहरी तौर पर दिए जाने वाले प्रोत्साहन, पुरस्कार व दंड के बारे क्या कहा जाए? क्या सीखने की सभी परिस्थितियां परस्पर रूप से तुलनीय होती हैं?

मैं अक्सर हाल में संपन्न हुए प्रयोगों में बेहतर प्रदर्शन करने वाले चूहों को अपनी बेटी को दे देता था। मैंने पाया कि बेटी द्वारा बहुत अच्छी देखभाल में रहकर उन चूहों में अधिक मुखर जिज्ञासा विकसित हो जाती थी। क्या वास्तव में, पशुओं को पालतू बनाना उनकी सीखने की प्रवृत्ति पर असर डालता है? उदाहरण के तौर पर, क्या वोल्फगैंग कोहलर के पालतू चिंपांजियों ने वो अंतर्दृष्टियां हासिल की थीं जिससे उन्होने अपनी पहुंच से दूर रखे केलों को पाने के लिए दो छड़ियों का जोड़कर उन्हें खींचने का तरीका ढूंढ लिया, अथवा वह क्षमता केवल इस बात का परिणाम थी कि उनका पालन पोषण टेनेरिफ के जर्मन द्वीप

पर बड़े इत्मीनान से हुआ था।[1] अक्सर मजाक में यह कहा जाता था कि येल का उद्दीपन-प्रतिक्रिया-पुनर्बलन सीखने का सिद्धांत कैलीफोरनिया के संज्ञानात्मक सिद्धान्त से भिन्न था, क्योंकि न्यू हैवन में क्लार्क हल ने अपने विद्यार्थियों को यह सिखाया था कि "चूहों को छूटते से ही कोशिश शुरू कर देनी चाहिए," जबकि बर्कले में एडवर्ड टोलमैन ने सिखाया था कि चूहों को भूल-भूलैया में विकल्प बिंदुओं पर रुककर सोचने के लिए पर्याप्त समय मिलना चाहिए।

अंततः क्या हम केवल सीखने के लिए सीखते हैं या हमें कोई बाह्य उद्दीपन सीखने के लिए मजबूर करता है? दूसरे बिंदु को मानें तो येर्केस-डोडसन सिद्धांत हमें बताता है कि अत्यधिक और अत्यंत कम प्रोत्साहन, सीखने में कमी ला देता है। मैंने इसे स्वयं आजमाया और बेहद चौंकाने वाले परिणाम आए। मैंने पाया कि दोनों ही प्रकार के चूहों (जो ज्यादा भूखे थे या सामान्य रूप से भूखे थे) ने दो अलग-अलग क्रमबद्ध दरवाजों में से निकलने का रास्ता खोज लिया था। सही रास्ता दो तरह से चिन्हित किया गया था। चूहों के पास विकल्प थे कि वे दाये-बांये वाला रास्ता चुनें या फिर प्रत्येक विकल्प बिंदु पर गहरे रंग वाले दरवाजे को चुनें। ऐसे चूहे जो अधिक भूखे थे, वो केवल एक ही संकेत पर ध्यान दे पाए जबकि सामान्य रूप से भूखे चूहों ने दोनों विकल्पों को पहचाना और उनका चुनाव किया था। मेरी बेटी के पालतू चूहों की भांति उनमें भी ज्यादा जिज्ञासा थी जो कम भूखे चूहे थे।

इस परिणाम के मद्देनजर, यह बहुत हद तक स्वाभाविक है कि वैज्ञानिक किसी भी तरह से इस बात का सरलीकरण करना चाहेंगे कि 'सीखने का अध्ययन' करने से हमारा क्या तात्पर्य है। निश्चित तौर पर ऐसा करने का एक मानक मार्ग यह है कि किसी एक प्रतिमान पर सहमति बने। जिससे परिणामों की तुलना करना संभव हो सके। ठीक ऐसा ही सीखने से जुड़े अध्ययनों के बिलकुल आरंभिक दौर में हुआ था। परंतु जैसा अक्सर होता है कि एक प्रतिमान के बरक्स दूसरा प्रतिद्वंद्वी प्रतिमान उभर कर आता है। ऐसा होते ही शीघ्र ही ये शोध भविष्य के प्रतिमान (पैराडाइम) बनने के युद्ध में बदल गए। दरअसल उन्नीसवीं शताब्दी के उतरार्द्ध से लेकर दूसरे विश्वयुद्ध के एक दशक बाद तक मनोवैज्ञानिक शोध के मंच पर सीखने से संबंधित सिद्धांतों के बीच ऐसा युद्ध चलता रहा, जिसमें विभिन्न 'स्कूल' होशियारी से यह दिखाने के लिए प्रयोग कर रहे थे कि उनका प्रतिमान किस तरह बेहतर था और प्रतिद्वंद्वी प्रतिमान किस तरह उनसे कमतर थे।

आरंभ से अपनी भिन्नताओं के साथ दो प्रतिद्वंद्वी प्रतिमान अस्तित्वान थे। पहले प्रतिमान में, उस समय के बालक के साथ एक किस्म की आणविक संबंधता (molecular associationism) थी, जो उन्नीसवीं सदी की भौतिकी के परमाणु (atomism) सिद्धांत का लाक्षणिक विस्तार थी (जैसे मज़ाक के तौर पर कहा जाता है कि मनोविज्ञान और भौतिकी के बीच हमेशा से ही ईर्ष्या रही है)। अधिगम के परमाणु सिद्धांत में यह धारणा अंतर्निहित थी कि

[1] वोल्फगैंग कोहलर, द मेंटैलिटी ऑफ एप्स (न्यूर्याक: हारकोर्ट प्रेस, 1926) 1917 में यह मूल रूप में जर्मनी में प्रकाशित हुई थी।

सीखने में एक तरह से धारणाओं, स्मृतियों, संवेदनाओं आदि की संबद्धता होती है। बहुत हद तक, इसके केन्द्र में संबंधात्मक जुड़ाव की धारणा निहित है अर्थात एक ऐसा जुड़ाव या कड़ी जो किन्हीं दो संवेदनाओं या विचारों के एक साथ घटित होने अथवा उनके बीच की स्थानिक निकटता के कारण विकसित होता है। यद्यपि संबद्धतावाद की उत्पत्ति बहुत पहले हुई थी लेकिन फिर भी इसके हाल के दार्शनिक समर्थकों में न केवल अरस्तु है बल्कि लॉक, बर्कले, ह्ययूम एवं मिल्स भी हैं। दरअसल, उन्नीसवीं सदी के मध्य तक दार्शनिक मनोवैज्ञानिक जॉन फेड्रिक हरबार्ट ने संबंधात्मक जुड़ाव को नए मनोविज्ञान में मील का पत्थर घोषित कर दिया था।

इस प्रतिमान को तेजी से विकसित करने में मस्तिष्क शरीर-क्रिया विज्ञान (brain physiology) विषय से भी समर्थन मिला, हालांकि यह समर्थन प्रत्यक्ष नहीं था। उन्नीसवीं सदी ने जब अपने अंतिम तिमाही में प्रवेश किया, गाल व स्पूर्जहाइम के समय का पुराना मस्तिष्क विज्ञान (phrenology) नई खोजों व गए सेरेब्रल कर्टेक्स के केन्द्रों के रूप में पुनः परिभाषित हो गया।

इस समझ में मस्तिष्क के ये केन्द्र किसी विशिष्ट कार्य के लिए नियत थे। शायद इस संबंध में सबका ध्यान खीचने वाला अवस्थितता अध्ययन (localization studies) 1870 में जर्मनी के मनोवैज्ञानिकों फ्रिच व हिटजिह का था। उनके अध्ययन में, कर्टेक्स के मध्य व पिछले हिस्से में अवस्थित विभिन्न केन्द्रों को विद्युतीय उद्दीपन्न दिए गए, जिनसे बिलकुल सटीक गत्यात्मक प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुईं : किसी एक केन्द्र को उद्दीप्त करने पर बंदर की बांह में मुड़ाव आ गया, जब दूसरे केन्द्र को उत्प्रेरित किया तो उसकी आंखें ऊपर की ओर घूम गईं। इसी क्रम में जब किसी अन्य केन्द्र को उत्प्रेरित किया तो वे नीचे की ओर घूम गईं।[2] मनोवैज्ञानिकों ने विचार किया कि यदि मस्तिष्क को इस तरह के स्थानिकों (मस्तिष्क में अवस्थित विशिष्ट केंद्र) के रूप में चिन्हित किया जा सकता है तो मन को क्यों नहीं? यहाँ यह याद रखने की जरूरत है कि इन विद्वानों के बीच प्रचलित दार्शनिक दृष्टिकोण मनो-भौतिकी समानान्तरवाद (psychophysical parallelism) का था, जिसके अंतर्गत मस्तिष्क और मन समानान्तर मार्ग पर चलते हैं।

उनके आलोचकों ने हालांकि कण विन्यासवाद संबंधी मॉडल को आगे बढ़ाया। इस प्रतिमान का प्रमुख आधार यह था कि मन और मस्तिष्क, दोनों ही अपने अंदरूनी हिस्सों की कार्य-पद्धति को नियंत्रित करते हुए अभिन्न तंत्रों की तरह काम करते हैं। अपने विरोधी प्रतिमान की ही तरह, यह प्रतिमान भी मस्तिष्क शरीरक्रिया विज्ञान पर आकार टिक गया। जबकि इस बात के लिए पहले से ही बहुत सारे प्रमाण दिए जा चुके थे कि समग्र मस्तिष्क प्रक्रियाएं स्थानिक केन्द्रों को नियंत्रित करती हैं। विख्यात पियरे फ्लोरेंस द्वारा तंत्रिका 'सामूहिक क्रिया' समग्रता का प्रतिनिधित्व किया गया था।

---

[2] गुस्ताव फ्रिच व एडवर्ड हिट्जिह का क्लासिक आलेख ''यूबेर डाई इलेक्ट्रिस्चे एरिग बरर्खेत डेस ग्रोशिन्स,'' आर्चिव डेर एनाटोमी अंड फिज़िओलोजी (1870): 300-332

मस्तिष्क की सामूहिक क्रियाओं को दैनिक जीवन की घटनाओं के अनुरूप समझाया जा रहा था कि साधारण अनुभव अपने छोटे-छोटे अंशों से ऊपर उभर पाते हैं। जैसे एक 'शहरी दृश्य' टैक्सी भवनों व पैदल चलने वालों का समूह भर नहीं होता बल्कि उससे कहीं अधिक होता है; वह अपने उन समग्र गुणों के रूप में आकार लेता है जो उसे एक शहर बनाते है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान निसंदेह इस दृष्टिकोण की सबसे प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति थी तथा सीखने संबंधी जिनका यह मत था कि सीखना स्थानिक कड़ियों के बजाय सम्पूर्ण संगठनात्मक व्यवस्था पर निर्भर होता है।

आइए, अब संबंधात्मक प्रतिमान के उदय पर बात करते हैं। उन्नीसवीं सदी के अंतिम 25 वर्षो में सीखने संबंधी नए अध्ययन किए गए। इन अध्ययनों में ज्यादातर अध्ययन शब्दों की सूची अथवा शब्दों के जोड़े याद कर लेने से संबंधित थे। परंतु वह मुख्यतः निरर्थक शब्दांश थे, जिन्होंने साहचर्य संबंध को उनके वैज्ञानिक रंग में रंग दिया। हरमन एबिंगहौस ने निरर्थक शब्दांशों का उपयोग करके सीखने की व्याख्याओं में से पुराने अनुभवों व अर्थ निकालने की क्षमता को निरर्थक साबित कर दिया था। एबिंगहौस की 1885 की ***यूबेर डास गेडेशत्निस*** निरर्थक शब्दांशों (अधिकतर प्रयोगो में स्वयं एबिंगहौस सब्जेक्ट थे) को सिखाने वाली उबाऊ सूची है। उदाहरण के लिए, उसके अध्ययनों की यह प्राप्तियाँ- कि सूची के में आए निरर्थक शब्दांश, आरंभ व अंत में आए शब्दांशों के बजाय अधिक धीमी गति से सीखे जाते हैं तथा मध्य व अंत में आए शब्दांशों के बनिस्बत आरंभ में आए शब्दों को बहुत ही आसानी से पुर्नउत्पादित किया जा सकता है। [3]

किन्तु संबंधता का बंध, चाहे निरर्थक शब्दांशों के बीच का ही हो, वह उस समय की वैज्ञानिक मापदंड पर, शीघ्र ही अत्याधिक कमजोर और मनोवृत्यात्मक प्रतीत हुआ। अतः सदी का अंत होते होते, इसका स्थान पावलोव की वैज्ञानिक रूप से अधिक ठोस 'प्रतिबंधित प्रतिक्रिया' ने ले लिया। पावलोव के पैराडाइम ने संबंधतावाद को एक मूर्तता प्रदान की। इस दौरान इसकी सामग्री यानी सीखना कुछ हद तक मापने योग्य हो गया जबकि इसने अपने संबंधतात्मक रूप को बरकरार रखा। उसके सम्पूर्ण पैराडाइम में उत्प्रेरण व प्रतिक्रिया के बीच के संबंध को स्थापित करने की आवश्यकता थीः लार टपकने की प्रतिक्रिया, जो पहले भोजन की वजह से शुरू हुई थी, वह अब मात्र खाना आने की सांकेतिक घंटी के कारण हो रही थी। शरीर-क्रिया विज्ञान में पावलोव को मिला नोबेल पुरस्कार एक प्रकार से भौतिकवाद की विजय थी किन्तु पावलोव स्वयं इससे पूर्णतया खुश नहीं थे। इस संबंध में हम आगे चर्चा करेंगे।

अब विन्यासवाद (configurationism) पर बात करते हैं, विन्यासवाद का समर्थन करने वाले

---

[3] एबिंगहौस का 1885 का क्लासिक अंग्रेजी में केवल संक्षिप्त में ही उपलब्ध है किन्तु मुख्य अंश वेनी डेनिस की रीडिंग इन दी हिस्ट्री ऑफ साइकॉलजी (न्यूयार्क: एप्पलेटोन-सेंचुरी-क्रोट्स 1948), 304-313 में खोजे जा सकते हैं। यह काफी दिलचस्प है कि एबिंगहौस का मूल मोनोग्राफ अपने पूरे अंग्रेजी अनुवाद के साथ 1913 में कोलंबिया विश्वविद्यालय के टीचर्स कॉलेज ने छापा था। जिस समय अमेरिका की शिक्षा में रटना आधारित सीखने का वर्चस्व था। इसे आउट ऑफ प्रिंट हुए अब काफी समय हो चुका है।

मनोवैज्ञानिकों की भी कमी नहीं थी। उनमे से बहुत को संबंधतावाद की अमूर्तता एवं सामान्य अनुभवों से उसकी दूरी को लेकर संदेह था। विन्यासवाद को मस्तिष्क संबंधी शोधों का भी समर्थन हासिल था जिसमें फ्लारेंस का समग्रतावादी तंत्रिका विज्ञान (holistic neurology) काफी प्रचलित था। सदी के अंतिम वर्षों में यह रुचि अपने अत्याधिक उफान पर थी कि भाषा और संस्कृति कैसे मन को आकार देती हैं। समाजशास्त्र जैसे प्रतिवेशी विषय में एमील दुर्खाइम व मैक्स वैबर जैसे विद्वान इस बात का आग्रह कर थे कि केवल भौतिक संसार के अनुभव ही मन को आकार नहीं देते हैं बल्कि संस्कृति भी मन को आकार देती है।

गेस्टाल्ट सिद्धांत विन्यासवाद के उन आरंभिक वर्षों में एक सर्वश्रेष्ठ मिसाल था, हालांकि इसकी अत्यधिक प्रगति प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही हो सकी। इसका मूल मंत्र था कि शारीरिक, जैविक व मानसिक तंत्र में अन्तर्निहित विशेषताएं, जो उनको रचती है, अपने स्थानिक तत्वों को नियंत्रित करके रखती हैं। भौतिक विज्ञान का क्षेत्र सिद्धांत इसका आदर्श था और उसका उद्घोषित सिद्धांतवाक्य था, "*समग्र अंशों के योग से बड़ा होता है*"। इस सिद्धांतवाक्य को गेस्टाल्टवादियों ने मानवीय धारणा पर किए अपने अध्ययनों की निरंतरता से पुष्ट किया। सीखने के संबंध में, टेनेरिफ द्वीप पर किया गया कोहलर का चिंपांजी प्रयोग दरअसल इसी इरादे से किया गया था: चिंपांजी केवल संबंधता के बारे में सोच-विचार करके दो छड़ियों को मिलकर केलों तक पहुँचने का औजार नहीं बना सकते थे, वहाँ सिर्फ इतना भर नहीं था, दरअसल वह तो अंतर्दृष्टि से ही हो सकता था जिसमें की पूरी परिस्थिति का विन्यास बनता है।

कोहलर को सम्पूर्ण सृष्टि में विन्यासवाद की सर्वव्यापकता में गहरा विश्वास था। संबंधतावाद पर उसने पहला बड़ा आक्रमण, चाहे अमित्रवत ही सही, परंतु सांकेतिक शीर्षक से प्रकाशित पुस्तक ऑन फिजिकल कॉन्फिगरेशन्स एट रैस्ट एंड इन स्टेशनरी स्टेट्स में 'परमाणुवाद की अपर्याप्तता' पर तर्क देते हुए दिया था। कोहलर ने सवाल उठाया कि अगर परमाणुवाद भौतिकी में ही अपर्याप्त था तो यह मनोविज्ञान में पैराडाइम के तौर पर कैसे काम आ सकता था? (ब्रूनर: 1971)।[4] उसने अपनी बात को समझने के लिए दृश्य बोध से संबंधित घटना का प्रयोग किया : जब बिलकुल नजदीकी से प्रकाश के दो स्रोत-बिन्दुओं से एक के बाद एक बारी बारी से कुछ समय के लिए रोशनी डाली जाती है तो आंखे प्रकाश बिन्दुओं से हलचल को न देखकर विशुद्ध रूप से प्रकाश-गति का अनुभव करती है। इसका अभिप्राय या सार यही है कि समग्र अपने अंशों के जोड़ से निश्चित ही अलग होता है।

फिर, ऐसा होते ही पावलोव स्वयं एक प्रकार के भाषा-शास्त्रीय विन्यासवाद (linguistic

---

[4] कोहलर के दार्शनिक विमर्श के लिए देखें मैरी हेनले द्वारा संपादित, दी सलेक्टेड पेपर्स ऑफ वोल्फगैंग कोहलर (न्यूयार्कः लिवराइट,1971)। संभवतया गैस्टाल्ट मनोविज्ञान की अनुभववादी उपलब्धियों का सबसे बेहतर व सबसे सुलभ दस्तावेज कुर्ट काॅफ्का (ज्यादातर हिटलर की सत्ता के उदय से पूर्व) की प्रिंसिपल ऑफ गैस्टाल्ट साइकॉलोज़ी (न्यूयार्क: हारकोर्ट ब्रेस, 1935) है।

configurationism) की वकालत करने लगे। भाषा जैसी क्रमिक घटना के साथ प्रतिबंधित प्रतिक्रियाएं कैसे मेल खाती हैं? क्या भाषा उद्दीपन को समझने के तरीके को बदल देती है? मनुष्यों के मामले में अनुबंधित उद्दीपक किसी अननुबंधित उद्दीपक में कैसे बदल जाता है? अपने जीवन के बाद के वर्षों में इस तरह के मुद्दों से परेशान होकर पावलोव ने एक दूसरा संकेत तंत्र पेश किया, उसके इस तंत्र में उद्दीपन अधूरी भौतिक वस्तुएँ न होकर कूट व श्रेणियों से युक्त भाषा थी। इस प्रकार भाषिक पर्यायवाचिकता ने सामान्य अनुबंधन में उद्दीपक प्रतिस्थापन को प्रभावित किया।

कुछ लोग का मानना हैं कि पावलोव के यह अपरिपक्व नए विचार साम्यवादी विचारक ग्राम्शी के विचारों से प्रभावित होकर विकसित हुए। किन्तु उसके दूसरे संकेत तंत्र ने नेचरविजनशेट की बजाय गेस्टेसविजनशेट के साथ मानवीय अध्ययन की यूरोपीय परंपरा को बनाए रखा, जो रूसी विद्वानों के बीच काफी सम्माननीय परंपरा थी। पावलोव के समय, अभी तक संरचनावाद दरअसल रूस के जीवंत साहित्य व भाषिक परिदृश्य की पहचान बना हुआ था। निसंदेह, दूसरा संकेत तंत्र बहुत हद तक उस परिदृश्य के प्रति एक प्रतिक्रिया थी। मुझे 1960 की एक हवाई यात्रा की याद आती है जिसमें मैं प्रतिष्ठित रूसी प्रवासी भाषाशास्त्री रोमन जैकोबसन के साथ मास्को से पेरिस जा रहा था। जब मैंने उन्हें पावलोव के भीतर, बाद में आए बदलाव तथा नोमेनक्लाटुरा के तहत लगे आरोपों को स्वीकारने के बारे में बताया तो वे हंसकर बोले, "नहीं नहीं जेरी! साम्यावादी विचारकों की जरूरत नहीं थी, पावलोव का रूसी होना ही काफी था। और तो और एक रूसी विद्वान होते हुए पावलोव इस विचार के साथ नहीं रह सकता था कि भाषा कोई प्रभाव नहीं डालती और इंसान कुत्तों की तरह सीखते हैं!"

आश्चर्य नहीं कि पावलोव के बाद वायगोत्स्की और लोरिया एवं सांस्कृतिक सिद्धांत देने वाले विद्वानों ने वह जगह ले ली और पावलोव के बहुत से युवा अनुयायियों ने बाद के सालों में बर्लिन के मनोविज्ञान संस्थान में गिस्टौलट मनोविज्ञान का अध्ययन किया।[5](लेव वाईगोत्स्की, 1962)

संबंधतावाद तथा विन्यासवाद के बीच की प्रतिद्वंद्विता का चरम प्रथम विश्वयुद्ध के पहले के सालों में अमेरिका पहुंचा। कोलंबिया विश्वविद्यालय के टीचर्स कॉलेज के प्रभावशाली थ्रोनडाइक द्वारा पोषित संबंधतावाद अमेरिका में फला फूला। थ्रोनडाइक जर्मन के संबंधता वाद के एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र में पोस्ट डॉक्टरल स्कॉलर रहे थे। अमेरिका और टीचर्स कॉलेज लौटकर उन्होंने 'अभ्यास व दोहराने' को सीखने के तरीके के रूप में कुशलतापूर्वक लोकप्रिय बनाया : इतना लोकप्रिय कि अभ्यास व दोहराना निरर्थक शब्दांशों

[5] लेव वाईगोत्स्की, थोट एंड लैंग्वेज (कैंब्रिज, मैसाचुसेस्ट विश्वविद्यालय: एम.आई.टी. प्रेस, 1962); एलेक्ज़ेंडर रोमानोविच लूरिया, दी रोल ऑफ स्पीच इन दी रैगुलेशन ऑफ नॉर्मल एंड एबनॉर्मल बिहेविअर (न्यूयॉर्क)

को याद करने के लिए करते हैं।[6](एडवर्ड एल. थोर्नडाइक, 1913-14)

किन्तु पावलोव के प्रभाव में अमेरिका में संबंधतावादी शोध कार्यक्रम बहुत जल्द ही बदल गया। अमेरिकी व्यवहारवाद के संस्थापक वाटॅसन ने पावलोव को लोकप्रिय बनाया तथा इस बात पर जोर दिया कि सभी तरह का सीखना उत्प्रेरणा व प्रतिक्रिया के जरिए होता है। ऐसा करके वाटॅसन ने अपने विचारों को अमेरिकी रुख दिया। मैं कई बार सोचता हूं कि क्या वह वॉटसन का अत्यधिक सरलीकरण था जो अंततः अमेरिकी संबंधतावादियों को पावलोव की विचार-धारा में शोध करने को चर्मोत्साह तक ले गया। यह उनमें शोध की ऊर्जा व दृढ़संकल्प ही था जिसने आधी सदी के लिए अमेरिका को पावलोववादिता का केन्द्र बना दिया। इस आधी सदी में जिनका प्रभुत्व रहा, वे थे वाल्टर हंटर, क्लार्क हल, एडवर्ड गुथरे, बी. एफ. स्किनर एवं केनेथ स्पेंस। इन सभी ने खुद को सीखने संबंधी उत्प्रेरणा-प्रतिक्रिया सिद्धांत का प्रतिष्ठित विद्वान मान लिया था।

बहुत बढ़िया तरीके के रचे गए पशु-प्रयोग ही उनका सबसे बड़ा वर्चस्व था। ऐसे प्रयोगों में भूल-भुलैया वाली पहेली में दौड़ना, अंतर करना सीखना आदि शामिल था या स्किनर का बॉक्स तथा इसी तरह के अन्य प्रयोग जो चूहों, कबूतरों या बंदरों पर भी किए गए। स्नातक कर रहे विद्यार्थियों का उपयोग भी किया गया जो मुख्यतः रटंत प्रणाली को लेकर था। हार्वर्ड में मेरे स्नातक के दिनों में इसे 'डस्टबाउल इंपीरिसिज्म' कहते थे।

व्यवहारवादी खोजों का निष्कर्ष सम्मिलित रूप से यह था कि प्रत्येक कार्य को पूरा करने के लिए सही पुनर्बलन के साथ कार्य को दोहराते रहना प्रदर्शन को बेहतर करता है। निसंदेह, इन खोजों में बारीकी थी - जैसे उनमें अंतराल रखने की बजाय बड़े स्तर पर परीक्षणों को एकत्र करके प्रयोगो के हानिकारक प्रभाव देखना, और ऐसी ही परस्पर विरोधी सम्बन्धों में सकारात्मक और नकारात्मक पुनर्बल स्थापित करके हस्तक्षेप सृजित करना, इत्यादि। परंतु कार्य का समग्र परिणाम को देखना या सामान्य रूप से प्रतिदिन सीखने का संबंध की तलाश करना इत्यादि मेंमेरा विश्वास वही है, जैसा मैंने पहले कहा था। इस मुद्दे पर मैं बाद में लौटूंगा।

किन्तु जैसा पहले यूरोप में था कि विरोधी विन्यासवाद शीघ्र ही अस्तित्व में आया। कुछ हद तक यह गिस्टौलट विचारकों से प्रभावित था, जो अब अमेरिका में थे और मजबूत विपक्ष थे, परंतु इनकी जड़ें अमेरिका में भी थी। यह विचारधारा खासकर एडवर्ड टोलमैन से पोषित थी। वह कोहलर के विचारों से सहमति रखते थे और लेविन के घनिष्ट मित्र थे, जो बाद मे बर्लिन गिस्टौलट समूह के नेता बने। इसके अतिरिक्त टोलमैन का भाई एक विख्यात नाभिकीय भौतिकविद था और उसने टोलमैन को पुराने-प्रचलित आणविक विचारों से बचा के रखा था तथा वास्तव में भौतिकतावादी प्रलोभनों से भी दूर रखा था। टोलमैन शुरू से ही संज्ञानवादी थे।

---

[6] एडवर्ड एल. थोर्नडाइक की क्लासिक रचना एज्युकेशनल साइकॉलोज़ी, तीन वॉल्यूम में है, यह 1913-1914 में आई।

टोलमैन की पहली प्रमुख पुस्तक 1932 में आई और यह जल्द ही असंतुष्ट लोगों के बीच प्रसिद्ध हो गई और वे इनके अनुयायी बन गए वहाँ उनके अनुयायियों की संख्या बेहद थी। उनके विद्यार्थियों ने विशेष रूप से डेविड क्रेश ने व अन्यों ने भी संबंधतावाद के विरुद्ध इस जंग में उनका साथ दिया। दरअसल द्वितीय विश्वयुद्ध तक अमेरिका में विन्यासवादी तथा संबंधतावादी अधिगम सिद्धांतवादियों के बीच खुला टकराव हो चुका था। पहले समूह का मानना था कि सीखना मुख्यतः ज्ञान को ऊपर से नीचे की ओर (अधोगामी) व्यवस्थित करने का कार्य है जबकि दूसरे समूह का जोर इस बात पर था कि सीखना या ज्ञान का संवर्धन करना नीचे से ऊपर की ओर (ऊर्ध्वगामी) होता है। विन्यासवादी, यद्यपि संख्या में काफी कम थे, लेकिन जब वे यूरोप (जहां हिटलर का बोलबाला था) से भागे तो उन्हें अमेरिकी परिदृश्य में आधिकारिक तौर पर अच्छी तरह से अपनाया गया। कोहलर को हार्वर्ड में विलियम जेम्स व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया गया था और कर्ट लेविन तो सामाजिक मनोविज्ञान में लगभग पथप्रदर्शक ही बन गए। गिस्टौलट समूह के विस्थापित सदस्य शीघ्र ही अमेरिका के प्रमुख विश्वविद्यालयों में स्थापित हो गए। उन्होंने अनुभवजनित घटना-क्रिया-विज्ञान को बजाय रहस्यमयी होने के सहज-बुद्धि बना दिया, जो व्यवहारवादी अमेरिकी मनोविज्ञान की पकड़ के चलते अपने आप में एक उपलब्धि है। सीखने को छोटे-छोटे टुकड़ों में समझने की बजाय चीजों को संदर्भ से जोड़कर समझा जाने लगा ।

टोलमैन के शोध को एक उदाहरण के रूप में लेते हैं। उन्होंने यह सिखाया कि सीखना एक तरह से नक्शा बनाने जैसा है और यह कि सीखना, लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु चीजों को उनकी उपयोगिता के आलोक में व्यवस्थित करना है।

1947 में बर्कले संकाय को दिए अब तक के प्रसिद्ध शोध व्याख्यान “चूहों व मनुष्यों में संज्ञानात्मक ढांचे” में टोलमैन ने यह दावा किया कि प्रयत्न-त्रुटि विधि प्रभावी समाधानों की खोज के लिय आदतों के अनुसार कार्य करना नहीं है अपितु एक समाधान तैयार करने की दिशा में स्थिति का जायजा लेने ले लिए आगे-पीछे देखना है। इसलिय उन्होंने अपने विद्यार्थियों से आग्रह किया की वे भूल-भुलैया में चूहों को तेजी से न दौड़ाएं।[7] उनका मानना था कि हमारे संज्ञानात्मक मानचित्र हमारे दुनिया से सामना करने के संयोग का आईना भर नहीं होते। बल्कि हमारे उन प्रयत्नों के रिकॉर्ड होते हैं जो प्रयत्न परिणाम तक पंहुचने में सिद्ध हो चुके होते हैं। इस दृष्टि से उनका विचार मूलतः प्रयोजनवादी था, शायद इसलिए क्योंकि मनोविज्ञान का विद्यार्थी रहते हुए उनको हार्वर्ड के प्रयोजनवादी दार्शनिकों, विशेषकर सी. आई. लेविस का साथ मिला था। टोलमैन लेविस के बड़े प्रशंसक थे। टोलमैन का अनुसरण करते हुए डेविड क्रेश ने तो यहां तक प्रस्तावित कर दिया था कि सीखना केवल निष्क्रिय पंजीकरण नहीं अपितु परिकल्पना प्रेरित होता है। क्रेश ने यह

---

[7] टोलमैन की सबसे प्रभावशाली पुस्तक पर्पज़िव बिहेविअर इन एनिमल्स एंड मैन (न्यूयॉर्क : सेंचुरी, 1932) है। अपने बर्कले व्याख्यान को उन्होंने बाद में इंटरनेशनल कांग्रेस के संबोधन में और विस्तार दिया।

दिखाने का प्रयास किया कि चूहे भी परिकल्पना करते हैं।[8](क्रेंच,1932)

टोलमैन की तुलना उनके समय के ही प्रमुख, संभवत: अत्याधिक उग्र संबद्धतावादी व्यवहारवादी बीएफ़ स्किनर से करें तो बहुत कुछ सामने आता है। निसंदेह, स्किनर क्रियाप्रसूत अनुबंधन की वकालत जितने जोरदार ढंग से कर रहे थे, उतने ही जोरदार ढंग से टोलमैन संज्ञानात्मक ढांचे के सिद्धांत का समर्थन कर रहे थे। उनकी केंद्रीय संकल्पना क्रियाप्रसूत अनुक्रिया की थी - ऐसी क्रिया जो आरंभ में समीपस्थ वातावरण के किन्हीं विशिष्ट लक्षणों के प्रत्यक्ष नियंत्रण में नहीं होती। क्रियाप्रसूत अनुक्रिया का उदाहरण स्किनर को प्रारम्भिक कबूतर द्वारा उपलब्ध हुआ है जो बॉक्स की दीवार पर लगे बटन पर चोंच मारता है इससे या तो वह प्रबलन (जैसे एक प्रकार का अनाज का दाना) का उत्पादन करता है या फिर प्रबलन उत्पादन करने में फेल हो जाता है।

कोई भी प्रबलन क्रियाप्रसूत अनुक्रिया की संभावना को बढ़ा देता है। संभावना का स्तर इस पर निर्भर करता है कि क्या पुनर्बलन के बाद सतत प्रतिक्रिया होती है या अलग-अलग। और यह कि यह नियमित (आवधिक) होता है या फिर अनियमित (अनावधिक) होता है। उदाहरण के लिए आवधिक पुनर्बलन उम्मीद से ज्यादा प्रतिक्रिया पैदा करता है। हालांकि स्किनर इस तरह के सातत्य की व्याख्या करने को उम्मीद पैदा करने वाली योजना कहकर मजाक उड़ाते थे। स्किनर के सीधे-साधे शब्दों में सीखना पूरी तरह पुनर्बलन देने की अनुसूची के नियंत्रण में होता है। पुनर्बलन केवल सकारात्मक हो सकता है और दंड सीखने को प्रभावित नहीं करता है। हालांकि स्किनर कभी-कभी कुछ व्यंग्यात्मक लहजे में कहते थे कि सीखने को शायद ही किसी सिद्धांत की आवश्यकता है।[9](बी.एफ. स्किनर, 1950)

निश्चित ही सारे व्यवहारवादी संबंधतवादी स्किनर द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत की आलोचना से सहमत नहीं थे बल्कि येल में तो क्लार्क हल ने अपने सिद्धांत को परिष्कृत एवं स्वयंसिद्ध मान्यता के रूप में प्रस्तुत किया था कि सकारात्मक व नकारात्मक पुनर्बलन कैसे निर्मित होते हैं। किसी अनुकूलित उत्प्रेरण को क्या कोई खास बदलाव व्यापक बनाता है और कैसे कोई जीवधारी पुनर्बलन देने वाले का पूर्वानुमान करता है। उनकी शुरूआती पुस्तकें 1943 की प्रिंसिपल्स ऑफ बिहेवियर तथा 1952 की श्रेष्ठताबोधक शीर्षक वाली ए बिहेवियर सिस्टम पुस्तक तालिकाओं से सीखने, संबंधित आदर्श वक्रों से एवं उनकी खोजों से, मुख्य स्वयंसिद्ध मान्यताओं से, जोड़ने वाले अमूर्त सूत्रों से भरी हुई थीं। निश्चित ही वह सीखने के बारे में गणितीय मॉडल विकसित करने का एक अद्भुत प्रयास था, जिसने एक पीढ़ी

---

[8] क्रेंच का महत्त्वपूर्ण अध्ययन आई. क्रेंचेवस्की (अपने मूल नाम से लिखा गया) है, ''हाइपोथिसिस' वर्सेज़ 'चान्स' इन दी प्रिसोल्यूशन पीरियड इन डिस्क्रिमिनेशन लर्निंग'', यूनिवर्सिटी ऑफ केलीफोर्निया पब्लिकेशन इन साइकोलोजी 6 (1932): 27-44।

[9] बी.एफ. स्किनर, ''आर थ्योरीज़ ऑफ लर्निंग नेसेसरी?'' फिलोसोफिकल रिव्यू 57 (1950): 193-216।

बाद तक अभिकलनात्मक मनोवैज्ञानिकों को व्यस्त रखा।[10]

हल व स्किनर के बीच की टकराहटें तथा इन दोनों व टोलमैन के बीच की टकराहटें सीखने संबंधी सिद्धांतों के बीच आखिरी लड़ाई थी। अपने शास्त्रीय रूप में सीखने संबंधी सिद्धांत 1960 के आसपास खत्म से हो गए। हालांकि अभी भी स्किनर के अनुयायी हैं जो पूरी निष्ठा के साथ और एक-दूसरे के लिए क्रियाप्रसूत खोजों को प्रकाशित करते रहते हैं। किन्तु मैं टोलमैन या हल के किसी अनुयायी को नहीं जानता। [11](आर. हिलगार्ड, 1956)

संज्ञानात्मक क्रांति के कारण या शायद ध्यान कहीं और केंद्रित हो जाने के कारण सीखने संबंधी सिद्धांतों का महत्त्व खत्म हो गया। 1960 के बाद सीखने संबंधी उत्प्रेरण-प्रतिक्रिया सिद्धांत रुक गया और वह सिद्धांत अपने प्रति नकारात्मक विचारों से ही मानों घिर गया। सीखने संबंधी अन्य कणवादी विचार पुनर्भाषित होकर सामान्य संज्ञानात्मक सिद्धांतों में समाहित हो गए जैसे न्यूवैल व सिमोन का समस्या समाधान संबंधी सिद्धांत या ब्रूनर, गुडनाउ व ऑस्टिन का चिंतन संबंधी सिद्धांत। मिलर, ग्लान्टर और प्रिबरेम का नियोजन संबंधी सिद्धांत।[12]

1960 के दशक के अंत तक सीखने को सूचना प्रसंस्करण की अवधारणा के रूप में रूपांतरित किया जाना शुरू हो गया था और इसमें यह निहित था कि एक चीज सीखने के मूल लक्षण दूसरी चीज सीखने के मूल लक्षणों से अलग नहीं है। हर चीज एक ही तरह से सीखी जाती है। निश्चित ही पुराना संघर्ष खत्म हो चुका था और उतने ही दिलचस्प तरीके से चूहों की पुरानी प्रयोगशालाएं और उनकी अक्सर दिखने वाली भूल-भुलैया पहेलियां गायब हो गईं।

जब मैं परिवर्तन के इस दौर पर मंथन करता हूं तो मुझे लगता है कि यह भाषा का अध्ययन था खासकर भाषा अर्जन का जो सीखने संबंधी सिद्धांतों के पतन का कारण बना। भाषा का प्रयोग और इसका अर्जन सीखने संबंधी खंड-खंड-उत्प्रेरण-प्रतिक्रिया सिद्धांत की पहुंच से दूर की चीज थे। भाषा को इस सिद्धांत की सीमा में लाने के प्रयास शीघ्र ही निरर्थक साबित हो गए और ज्यादातर भाषाविदों ने इन सिद्धांतों को नकार दिया।

---

[10] कार्ल एल. हल, प्रिंसीपल ऑफ बिहेविअर (न्यूयॉर्क : एप्लेटोन-सेंचुरी-क्रोट्स, 1942) एंड ऐ बिहेविअर सिस्टम: एन इंट्रोडक्शन टू बिहेवियर थ्योरी कन्सर्निंग दी इंडिविज्युअल आर्गेनिज़्म (न्यूयॉर्क हैवन,: येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1952)।

[11] क्लासिकल लर्निंग सिद्धांतों पर सबसे विस्तृत व प्रामाणिक वोल्यूम अर्नेस्ट आर. हिलगार्ड की थ्योरीज़ ऑफ लर्निंग, द्वितीय संस्करण है (न्यूयॉर्क : एप्लेटोन-सेंचुरी- क्राट्स, 1956) है।

[12] ऐलेन न्यूवैल व हर्बर्ट ए. सिमोन ह्यूमन प्रोब्लम सोल्विंग (एंगलवुड, एन.जे.: प्रेंटिस हाल, 1972); जेरोम ब्रूनर, जैकलीन गुडनाउ व जोर्ज ए. आस्टिन, ए स्टडी ऑफ थिंकिंग (न्यूयॉर्क : विले, 1956); जोर्ज ए मिलर, यूज़ेन गलेंटर व कार्ल प्राइबैम, प्लाॅन्स एंड दी स्ट्रक्चर ऑफ बिहेविअर (न्यूयॉर्क : होल्ट, रिनहर्ट, व विन्सटन 1960)।

समकालीन भाषाविदों ने सीखने संबंधी संबंधतावादी सिद्धांत की जो आलोचना की उसकी शुरुआत चोमस्की द्वारा स्किनर की वर्बल बिहेवियर किताब पर लिखी आक्रामक समीक्षा से हुई।[13] किन्तु इसने बौद्धिकतावादी समस्या समाधान पर जोर देने वाला जो मॉडल खोजा था वह अब भाषा के सरोकार से परे जा चुका था। अब लोग पूछने लगे थे कि क्या सांस्कृतिक कोड भी भाषा की तरह ही सीखे जाते हैं। सीखने-संबंधी पुराने सिद्धांतों के संदर्भ अब न मनोभाषाविद् और न ही सांस्कृतिक-मनोवैज्ञानिक कुछ सोचते हैं।

मुझे लगता है कि यह कहना सही होगा कि इस रिहाई के दौर में पिछली किसी भी सदी की अपेक्षा हाल के इन तीन दशकों के दौरान भाषा अर्जन के बारे में सबसे ज्यादा जाना गया है। दरअसल तीनों दशकों को जोड़कर देखे तो भी यहीं निकल कर आता है। यह याद रखना भी जरूरी है कि शोधों की जिस बाढ़ ने इसे संभव बनाया उसे भाषाविद् चोमस्की ने जन्म दिया न कि किसी सीखने संबंधी विचारक ने।

यही नहीं, भाषा की तरफ हुए इस रुख ने सीखने संबंधी शोध को बहुत से पुराने कृत्रिम प्रयोग वाले पेराडाईम - भूलभुलैया, समूह-संबद्धता शब्द सूची, निरर्थक शब्दों आदि से दूर कर दिया। मैं एक उदाहरण लेता हूं। यह पूर्वानुमान कि बहुत छोटे बच्चे अपनी मूल भाषा के ढांचे से इतनी जल्दी सामंजस्य बना लेते हैं कि वे इसके ध्वनि संबंधी भेदों को माता-पिता की बातचीत में पकड़ने लगते हैं जबकि वे भाषा को ठीक तरह से बोलना सीख नहीं पाए होते हैं। यह एक ऐसी पूर्वानुमान है जो भाषा विज्ञान एवं विकास संबंधी सिद्धांतों से विकसित हुई है। आप इसे अपने संदर्भ में सीधे जांच सकते हैं इस बात को ध्यान में रखकर कि क्या बच्चे के तुतलाने में पराई भाषा की ध्वनियां ज्यादा हैं या मूल भाषा की। इसीलिए फ्रांसीसी बच्चे फ्रांसीसी में तुतलाते हैं और जापानी बच्चे जापानी में। ऐसे प्रयोग किसी संदर्भ विशेष में किए जाने चाहिएं न कि किसी भूल-भुलैया में। बिना किसी ताम-झाम के पता चलना चाहिए कि प्रयोग के नतीजे सचमुच के लोगो द्वारा वास्तविक जीवन में सीखने से कोई संबंध रखते हैं या नहीं।

तो क्या हम यह नतीजा निकाल लें कि सीखने संबंधी संबंधतावादी व विन्यासवादी सिद्धांतों के बीच के द्वंद्व से तीन चौथाई सदी में सीखने की वास्तविक प्रवृत्ति के बारे में बहुत कम या कुछ भी नहीं सिखाया। ऐसा मानना बहुत बड़ी भूल होगी। पवलोव के कुत्ते व कोहलर के चिंपांजी दोनों ने ही बहुत कुछ सीखा लेकिन भिन्न तरीकों से व भिन्न परिस्थितियों में। इस दावे के हमारे पास पर्याप्त कारण हैं कि उनमें से किसी की भी पद्धति को दूसरे की पद्धति में नहीं बदला जा सकता। शायद अगले चरण में हम यह जानेंगे कि उन्हें साथ-साथ कैसे रखा जा सकता है। परंतु मैं एक चीज

---

[13] बी.एफ. स्किनर, वर्बल विहेविअर (कैंब्रिज मैसाचुसेस्ट: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1947)। चोम्स्की की स्ट्रक्चरलिस्ट-मैंटेलिस्ट व्यू सबसे पहले उनकी सिंटेक्टिक स्ट्रक्चर में प्रकाशित हुई थी (दी ह्यूज़: माउटन, 1957), स्किनर पर उनका पहला सीधा हमला वर्बल विहेविअर (इन लैंग्वेज 35 (1959): 26-34) दो साल बाद हालांकि एक अवधारणात्मक आश्चर्य के रूप में किन्तु बड़े अप्रत्याशित ढंग से आई।

के बारे में आश्वस्त हूं कि आप सीखने की प्रक्रिया को सीखी जा रही विषयवस्तु से अलग नहीं कर सकते और न ही तटस्थ संदर्भ में उसका अध्ययन कर सकते हैं। सीखना हमेशा ही परिस्थितिजन्य होता है और हो रहे कार्यों में अवस्थित होता है। संभवत: 'सामान्य रूप सीखने' जैसी कोई चीज नहीं होती और शायद यही है जो हम पावलोव के कुत्ते, कोहलर के चिंपांजियों से एवं सीखने के मतभेद जिन्हे इन्होने चिन्हित किया, से सीख सकते हैं।